



अध्याय दो

जमीन के साथ रहना

फसल इतनी भारी ऊगे कि वह हल की रेखाओं के नीचे दब जाए!
वह इतनी घनी हो कि सौ नवयुवक उसे काट न सकें!
इतनी भारी हो कि सौ युवतियाँ उसे उठाकर न ले जा सकें!

लद्दाख का बुआई गीत

लद्दाख में कृषि चक्र फरवरी व जून के बीच शुरू होता है और यह ऊँचाई पर निर्भर करता है। बुआई का समय संगीतमय सौंदर्य है। सूर्य का चाप अब ऊँचा होता है और घाटी पुनः जीवन्त हो गई है। गाँव के पूर्व की ओर ऊँचाई पर पत्थरों का बड़ा ढेर चौकोर मीनार की आकृति का 'न्यीथों', कृषि जंत्री (केलेंडर) का काम करता है। नीचे जिस बिन्दु पर छाया पड़ती है, तय करती है कि विविध गतिविधियाँ कब प्रारंभ की जाएँ। बुआई, पानी देना, कटाई के निर्दिष्ट संकेत होते हैं। सूर्य जब बुआई के लिये सही स्थान पर पहुँचता है, तब ज्योतिष से राय ली जाती है। वह तालिकाओं का अध्ययन करके बतलाता है कि अमुक शुभ दिन कार्यारंभ किया जा सकता है; वह धरती और जल तत्त्वों का समन्वय यथाशक्य कर लेता है। जिस किसी में भी उसे लक्षण दिखाई दें उसका चयन पहला बीज बोने के लिये किया जाता है।

इसके बाद धरती और जल के देवताओं — 'सदक' एवं 'इहू' — को संतुष्ट किया जाना आवश्यक है: भूमि के कीट, झरनों की मछलियाँ, भूमि की आत्मा। इन्हें आसानी से क्रोधित किया जा सकता है; गैंती चलाना, पत्थरों को तोड़ना, यहाँ तक कि ज़मीन पर चलने से उनकी शांति भंग हो सकती है। बुआई के पहले, उनके सम्मान में भोज तैयार किया जाता है। सारा दिन भिक्षुओं का समूह प्रार्थना करता है; कोई उस दिन मांसाहार नहीं कर सकता और 'चांग' (स्थानीय जौ की बीयर) नहीं पी सकता। पेड़ों के झुरमुट में, जो गाँव के सिरे पर हैं, जहाँ देवताओं के लिये मिट्टी की ईंटों की छोटी वेदी बनाई गई है, दूध चढ़ाया जाता है। जैसे ही सूर्यास्त होता है, अन्य वस्तुएं धारा में चढ़ाई जाती हैं।

खाद, कुछ सप्ताह पूर्व गधों की पीठ पर लाद कर लाई जाती है और उसकी ढेरियाँ खेतों के पास बनाई जाती हैं। अब उषाकाल में महिलाएँ उसे फुर्ती से हल की रेखाओं में बिखेर देती हैं। सूर्योदय होते ही पूरा परिवार इकट्ठा हो जाता है। दो लोग लकड़ी का हल उठाते हैं; उसके आगे विशाल 'दूजो' की जोड़ी होती है, जिनका नेतृत्व बच्चे करते हैं। काम और उत्सव एक ही है। लोग चाँदी की कलाई वाले पात्रों में 'चांग' पीते हैं और वायुमण्डल में समारोह का स्वर व्याप्त हो जाता है। गहरा बैंगनी लबादा धारण किये हुए एक भिक्षु पवित्र मंत्रों का पाठ करता है; हँसी व गीत खेत से खेत तक गुंजारित हो उठते हैं। सर्दियों का उल्लास समाप्त होता है।

'दूजो' के कंधों पर हल चढ़ा दिया जाता है। ये बड़े सुस्त पशु हैं किंतु गर्वीले भी हैं; उन्हें दौड़ाया नहीं जा सकता। वे मंथर गति से हल खींचते हैं। उनके पीछे बुआई करने वाला बीज फेंकता और गाता हुआ चलता है:

*मंजूश्री, विवेक की मूर्ति हार्क!
देवता, लहु और आत्माओं की स्वामिनी धरतीमाता, हार्क!
एक बीज से सौ पौधे उगें!
दो बीजों से हजार उगें!
प्रत्येक दाना जुड़वा हो!
कृपया इतना दें कि हम बुद्ध और बोधिसत्व को चढ़ा सकें,
कि हम संघ की सहायता कर सकें व निर्धनों को दें!*

एक बार बुआई का काम पूरा हो जाए तो फसल की विशेष देखभाल करने की आवश्यकता नहीं रह जाती — केवल पानी देना होता है, जो कि आम तौर पर क्रमवार दिया जाता है, कभी-कभी पासा फेंक कर भी तय करते हैं। अधिकांश गाँवों में सिंचाई का कार्य 'चुर्पोन' के जिम्मे होता है, जिसकी नियुक्ति या चुनाव ग्रामवासी करते हैं। वह आवश्यकतानुसार पानी को रोक कर या छोड़ कर जल प्रवाह को संचालित करता है। सभी घरों को प्रति सप्ताह कुछ निश्चित समय दिया जाता है जिसके दौरान वे मुख्य नहर को अपने खेतों की ओर मोड़ सकते हैं।

मैंने माँ और उसकी दो बेटियों को पानी देते हुए देखा। वे छोटी नालियाँ खोलतीं और जब भूमि तर हो जाए, उसे फावड़ा भर मिट्टी से बन्द कर देती थी। वे जल के फैलाव को बड़ी ही सरलता से नियंत्रित करती थीं। वे जानती थी कि पानी कहाँ सरलता से जाएगा और कहाँ उसे जाने हेतु मदद करनी पड़ेगी। फावड़ा-भर खुदाई इधर कर, थोड़ी भराई उधर करवा, पत्थर को खिसकाना कि नाली खुल जाए, यह सब समय की सही समझ का अद्भुत उदाहरण था। बीच-बीच में वे अपने फावड़ों पर झुक कर अपनी पड़ोसिन से बातें करतीं, किंतु एक नज़र पानी के बहाव पर रखती।

एक दूसरा उत्सवी अवसर कटाई का होता है। फसल काटने वालों की कतार जिसमें वृद्ध और युवा, स्त्री व पुरुष होते हैं, फसल को अपनी हंसियों से गाते हुए काटते हैं। शाम को लोग गाने, पीने और नाचने हेतु एकत्रित होते हैं। रसोई में मक्खन का दिया जलाया जाता है तथा गेहूँ, जौ तथा मटर की मालाएँ लकड़ी के खंभों के चारों तरफ लपेटी जाती हैं।

फसल को गट्ठरों में जमाया जाता है और फिर पीठ पर लाद कर कुटाई हेतु ले जाते हैं। कुटाई के लिये भूमि पर लगभग तीस फुट व्यास का गोल घेरा बनाया जाता है। अनेक पशु बीच के खंभे से एक पंक्ति में बाँध दिये जाते हैं, वे फसल को कुचलते हैं और झुक कर दानों को खाते भी हैं। इस कार्य के लिये 'दुजो' सर्वश्रेष्ठ हैं; वे न केवल भारी-भरकम हैं, अपितु एक बार हाँकने पर घंटो बिना रुके खुशी-खुशी घूमते जाते हैं। अक्सर यहाँ अनेक जानवरों का झुंड होता है — बारह के करीब, जिनके मध्य में 'दुजो' होता है जो बहुत छोटी दूरी में चक्कर लगाता है, जबकि घोड़े व गधे बाहर की ओर दौड़ लगाते हैं। इन सबके पीछे कुटाई करने वाला — कभी-कभी बच्चा पशुओं को हाँकता हुआ और गाते हुए उपदेश देता है: "हा-लो बाल्दुर, हा-लो बाल्दुर . . ." पशुओं का गोबर या लीद गिरकर अनाज को खराब न कर दे इसलिए कुटाई करने वाला एक खपची और बाल्टी लिये रहता है और गोबर के गिरने से पूर्व उसे बड़ी ही सरलता से झेल लेता है। एक अतिरिक्त 'दुजो' पास ही अपनी बारी आने की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है, जबकि अन्य जानवर जिन्हें ग्रीष्मकालीन चरागाहों से लाया गया है, खेतों में कटी हुई फसल की खंटियों को खाते रहते हैं।

दावन का कार्य तो कमाल की गरिमा के साथ होता है। एक खास सरल, लयबद्धता के साथ फसल को हवा में उछालते हैं; भूसी हवा में उड़ जाती है और अनाज भूमि पर गिरता है। दो लोग एक दूसरे के सम्मुख सुपड़े लेकर साथ काम करते हैं। वे काम करते हुए हवा को आमंत्रित करते सीटी बजाते हैं और कभी-कभी गाते हैं:

हे, वायु की पवित्र देवी!
 हे, पवन की सुंदर देवी!
 भूसे को ले जाइये!
 ओग्ल्ला स्कियोट!
 भूसे को अन्न से अलग कर दो!
 जहाँ कोई मानवीय सहायता न हो
 वहाँ ईश्वर हमारे सहायक हों!
 हे, सुंदर देवी,
 ओग्ल्ला स्कियोट!

तत्पश्चात् अनाज को छानते हैं। बोरियों में भरने से पहले एक छोटी धार्मिक आकृति या कभी-कभी उसका चित्र समारोह पूर्वक एक ढेरी के ऊपर पर रखा जाता है, फसल को आशीर्वाद देने के लिये।

सोनम ने मुझे अपने घर स्कांगसोल, प्रथम कटाई उत्सव के लिये निमंत्रित किया था। मेरी निद्रा जलते हुए 'शुक्पा' या जुनिपर की सुगंध से खुली। चाचा फुन्टसोग अगर का बर्नर लिये हुए एक कमरे से दूसरे कमरे में घूम रहे थे और सुगंध कोने-कोने में फैल रही थी। यह दैनिक क्रिया आध्यात्मिक शुद्धि सुनिश्चित करती है और सभी बौद्ध घरों में पूरी की जाती है।

मैं बालकनी में गई। पूरा परिवार — दादा-नाना, माता-पिता, बच्चे — खेतों में काम कर रहे थे, कुछ कटाई कर रहे थे, कुछ ढेरियाँ बना रहे थे और कुछ दावन कर रहे थे। प्रत्येक क्रिया के लिये उसका एक निर्धारित गीत था। फसल सुनहरी ढेरियों में रखी थी, हर खेत में सैकड़ों ढेरियाँ थी। कहीं भी भूमि बमुश्किल दिखाई देती थी। घाटी साफ प्रकाश से नहा रही थी, तीव्र आलोक दर्शनीय था। इस ज़मीन पर कोई कुरूप ज्यामिती नहीं लादी गयी थी, कोई पंक्ति दोहराई नहीं गयी थी। हर बात आँखों को भली और आत्मा को शांतिदायक लगती थी।

घाटी के और थोड़ा नीचे एक व्यक्ति गा कर अपने मवेशियों से कह रहा था जो उसके खेतों को जोत रहे थे:

*ओ, तुम दो महान बैल, याक के पुत्र!
तुम्हारी माँ भले ही गाय थी, पर तुम शेर व सिंह हो!
तुम बाज की तरह हो, पक्षियों का राजा!
क्या तुम ऊँची चोटियों पर नर्तन नहीं करते हो ?
क्या तुम वह नहीं हो जो पर्वतों को अपनी गोद में ले लेता है ?
क्या तुम वह नहीं हो जो एक घूंट में महासागर को पी लेता है ?
ओ, तुम दो महान बैल, खींचों! खींचों!*

छत पर मेरे ऊपर गड़गड़ाता हुआ 'जान्स्तुंग' (आठ फुट लंबा तांबे का भोंपू) का स्वर बज उठा जो इस बात का संकेत था कि समारोह आरंभ होने वाला है। सभी धार्मिक आयोजनों की भाँति यह भी एक सामाजिक आयोजन था और अनेक अतिथि पहले ही आ चुके थे। पुरुषों एवं महिलाओं की आवभगत पृथक कमरों में की जा रही थी। वे छोटी चौकियों पर बैठे थे जिन पर ड्रेगन तथा कमल-पुष्प उकेरे गए थे। दीवारों पर कई पीढ़ियों पुरानी चित्रकारी थी। पुरुष हाथ के बुने लम्बे लबादे 'गोन्यास' पहने हुए थे, कुछ प्राकृतिक हल्के भूरे रंग के थे, कुछ को पहाड़ियों के बैंगनी रंग जैसा रंगा गया था। अनेकों ने लंबे फीरोज़ा बाल पहने हुए थे और



पतझड़ के आरंभ में आलू के खेत की जुताई। द्जो, याक व गाय का संकर, लद्दाख का सर्वाधिक मूल्यवान भारवाहक पशु है।

पारंपरिक केश सज्जा — पीछे चोटी तथा सामने से घुटा हुआ सिर था। औरतें पूरे वस्त्र धारण की हुई थी, ऊपर वेस्टकोट, जिस पर ज़री का काम था। उन्होंने शानदार आभूषण पहन रखे थे — कंगन, अंगूठियाँ, हार — और चमकते ‘पेराक’, सिर की टोपी पर दर्जनो फीरोज़ा और मूँगे जड़े हुए थे। एक वृद्ध ने मुझे बुला कर अपने पास बिठाया। “यह मेरी नई बहू है,” उसने औरों से मेरा परिचय कराते हुए कहा। उसकी आँखों में शरारत झलक रही थी, जब वे सब हँस पड़े।

सोनम अपने मेहमानों के पास बार-बार जा कर उन्हें चाय और ‘चांग’ पेश करता था। जब वह ग्लास भरने लगता तो आप से आशा की जाती थी कि आप हर बार मना करें, अपना गिलास कुछ इंच पीछे ले जाएँ, ताकि उसे उसमें पेय डालने से रोका जा सके, और अंत में मान जाएँ। ऐसी विनम्रता से इनकार ‘ड्जांग चोचेस’ कभी-कभी मेज़बान और मेहमान के बीच गीत का रूप ले लेता है:

मैं अधिक चांग नहीं पियूंगा।

सिर्फ तब जब कोई नीलाकाश को अपनी गोद में ले ले, मैं चांग लूंगा।

सूर्य और चंद्र नीलाकाश को अपनी गोद में लेते हैं।
ठंडा चांग पीजिए! पीजिए! पीजिए!

मैं और चांग नहीं पियूंगा।
तभी जब कोई झरने के पानी का जूड़ा बांध सके, मैं चांग लूंगा।

सुनहली आँखों वाली मछलियाँ झरनों का जूड़ा बांधती हैं
ठंडा चांग पीजिए! पीजिये! पीजिये!

भिक्षुगण परिवार के उपासना कक्ष 'त्योत्खांग' में समारोह करवा रहे थे। उन्होंने मन्खन मिश्रित जौ के आटे का पिरामिड बनाया और फूलों की पंखुड़ियों 'स्तोर्मा' से उसे सजाया, यह बौद्ध धर्म के पाँच धर्मपदों को अर्पित किया जाता है जो धर्म के रक्षक देवता हैं। अब दो दिनों तक सोनम का परिवार 'स्कांगसोल' का उत्सव मनाएगा; कटाई का कार्य समाप्त हो गया था तथा कृषक के वर्ष का नया चक्र शुरू हो जाएगा। प्रार्थनाएँ आनंद और समृद्धि हेतु की जाती हैं, सिर्फ उसी एक परिवार के लिए नहीं अपितु ब्रह्माण्ड के हर एक व्यक्ति के लिये। भिक्षु के मंत्रोच्चार की घुटी आवाज और ढोल की लयबद्ध थापें सारे गाँव में अंधेरा होने तक सुनी जा सकती थीं।

लद्दाख में आने के तुरंत बाद, मैं अपने कुछ वस्त्र एक जलधारा में धो रही थी। ठीक जब मैं मैले वस्त्र पानी में डालने वाली थी, एक लड़की जिसकी आयु सात वर्ष से अधिक नहीं होगी, जल धारा के ऊपरी गाँव से आई। "आप अपने वस्त्र उस पानी में नहीं डाल सकती", उसने संकोचपूर्वक कहा। "नीचे के लोग उसे पीते हैं।" उसने इशारे से एक गाँव को दिखाया जो धारा से एक मील नीचे की ओर था। "आप उस तरफ की धारा का उपयोग कर सकती हैं, वो केवल सिंचाई के लिये है।"

मैं धीरे-धीरे समझने लगी थी कि लद्दाखी किस प्रकार ऐसे कठिन वातावरण में जीवित रहते हैं। 'मितव्ययिता' शब्द का अर्थ भी मेरी समझ में आने लगा था। पश्चिम में 'मितव्ययिता' का आशय वृद्ध आँटियों और तालाबंद अलमारियों से होता है। किंतु जो 'मितव्ययिता' आप लद्दाख में पाते हैं और जो लोगों की समृद्धि का मूलाधार है, वह एकदम अलग है। सीमित संसाधनों का सही ढंग से इस्तेमाल का कृपणता से कुछ लेना-देना नहीं है; इस मितव्ययिता का मूलार्थ है "उपयोगिता": कम से अधिक प्राप्त करना।

आप और कहाँ ऐसा पाएँगे कि जो वस्तु एकदम जीर्ण-शीर्ण हो गई हो, किसी योग्य न रह गई हो और जिसे फेंक दिया जाता है, लद्दाखी उसका भी कोई उपयोग तलाश लेते हैं। कोई भी चीज़ फेंकी नहीं जाती। जो खाया नहीं जा सकता, वह पशुओं को खिलाया जाता है; जिसका

बतौर ईंधन उपयोग नहीं हो सकता, उससे भूमि को उर्वर बनाया जा सकता है।

सोनम की दादी, अबी-ले, जौ की 'चांग' बनाने के बाद शेष को फेंक नहीं देती थी। उन्होंने उबले और खमीर उठे जौ में पानी मिलाया और उससे चार अन्य प्रकार के पेय बनाए। उसके पश्चात् भी उसे फेंकने के बजाय, उन्होंने अनाज को याक के बालों के कंबल पर सुखा दिया ताकि उसे बाद में पीस कर खाने के काम लाया जा सके। उन्होंने खूबानी के गूदों के कुचले हुए अवशिष्ट, गहरे भूरे लईनुमा आटे में से, जिससे तेल पहले ही निचोड़ कर निकाल लिया गया था, छोटे-छोटे कप बनाए; बाद में जब वे कड़े हो जाएंगे, तब वे उनका प्रयोग अपने चरखे के तकुओं के तौर पर करेंगी। वे बर्तन धुले पानी को भी बचाकर रखती थी, जिसमें कुछ भोजन के कण बच रहते थे, जिससे पशुओं को किंचित अतिरिक्त पोषक तत्व मिल सके।

लद्दाखी अपने घर के बुने लबादों में तब तक थिगड़े लगाते जाते हैं, जब तक की और थिगड़े लगाना संभव न हो जावे। जब शीतकाल में वे एक के ऊपर एक, दो या तीन लबादे पहनते हैं, तो जो सबसे अच्छा हो, उसे सबसे अंदर पहनते हैं, ताकि वह विशेष अवसरों के लिये अच्छी स्थिति में रहे। जब घिस चुके लबादे को सिलकर रखना नामुमकिन हो जाता है, तब उसमें मिट्टी भर दी जाती है और सिंचाई की नाली के कमज़ोर स्थानों पर ढूस दिया जाता है, ताकि रिसाव न हो।

सभी पौधे, झाड़-झंखाड़, झाड़ियाँ जो तेज़ी से बढ़ती हैं, या तो सिंचित भूमि के किनारों पर या पर्वतों पर जिन्हें हम "घास" (वीड) कहते हैं – को एकत्रित किया जाता है और उनका उचित उपयोग किया जाता है। 'बर्त्स' का प्रयोग ईंधन और पशु चारे हेतु; 'याग्दजा' का घरों की छतों के लिये; काँटेदार 'त्सेमीग' का बागों व खेतों में बागड़ लगाने हेतु जिससे कि पशु अंदर न आ सके; 'डेमोक' का लाल रंग बनाने हेतु। अन्य का उपयोग औषधि, खाद्य पदार्थ, अगर तथा टोकरियाँ बनाने के लिये किया जाता है।

घुड़सालों की मिट्टी को खोदकर उसका उपयोग खाद के रूप में होता है, यह पशु मूत्र के पुनर्चक्रीकरण की बेहतर मिसाल है। गोबर केवल पशुशालाओं व जानवरों के बाड़ों से नहीं बल्कि चरागाहों से भी एकत्रित किया जाता है। यहाँ तक कि मानव मल को भी व्यर्थ नहीं जाने दिया जाता। हर घर में खाद बनाने वाले छोटे कमरेनुमा शौचालय हैं, उसमें फर्श में एक छोटा छिद्र होता है। यह खड़े ढलवाँ मार्ग पर बना होता है, जो आम तौर पर एक मंजिल ऊपर होता है। रसोई के चूल्हों से जो मिट्टी और राख निकलती है, उसे उसमें डाल देते हैं, इस प्रकार रासायनिक अपघटन होता है और बेहतर खाद तैयार होती है, साथ ही दुर्गन्ध भी दूर हो जाती है। साल में एक मर्तबा शौचालय को भू-स्तर तक खाली किया जाता है और खाद को खेतों में प्रयुक्त करते हैं।

इन उपायों से लद्दाखी परंपरा के अनुसार हर चीज़ का पुनर्चक्रीकरण करते आए हैं। अक्षरशः कोई भी वस्तु वहाँ फालतू है ही नहीं। अपने अत्यंत कम संसाधनों से, कृषकों ने लगभग संपूर्ण आत्मनिर्भरता का प्रदर्शन किया है, वे केवल चाय, नमक तथा कुछ धातुओं, जिनसे वे खाना बनाने के पात्र एवं औजार बनाते हैं, के लिये ही बाहरी जगत पर आश्रित हैं।

हर दिन प्राप्त हुए नए अनुभवों से मैंने लद्दाख में इस आत्मनिर्भरता का मतलब जाना है। “सस्टेनेबिलिटी” (स्वयं को बनाए रखने की क्षमता) तथा “इकोलॉजी” (पर्यावरण विज्ञान) की धारणाएँ मेरे लिये तब तक कोई मायने नहीं रखती थी, जब मैं यहाँ पहली दफा आई। कुछ वर्षों में न सिर्फ मैं लद्दाखियों का प्रकृति से सफलता पूर्वक अनुकूलन करने के जज़्बे का आदर करने लगी अपितु अपनी और साथ ही पश्चिमी जीवन शैली का पुनर्मूल्यांकन करने के लिये भी मजबूर हुई जिसकी मुझे आदत थी।

प्रकृति के अधिक निकट रहने के मेरे कुछ श्रेष्ठतम अनुभव अधिक ऊँचाई के चारागाहों ‘फू’ से प्राप्त हुए। पशुओं के लिये भी ‘फू’ स्वर्ग है। वसंत के आरंभ में कृषक ने उनके इस आनंद को उनसे गाकर कहा:

*ओह, तुम सुंदर पशु, हे बलवान पशु!
तुम्हारी पूँछ लंबी है, और तुम्हारे सींग आकाश तक जाते हैं!
कृपया हमारे खेतों की जुताई करो,
अब कृपया हमारे लिये कठोर श्रम करो,
और हम तुम्हें चारागाहों में ले जाएंगे,
जहाँ तुम लंबी घास और फूलों को खा सकते हो,
और सारा दिन कोई काम न करना!
हे सुंदर पशु!*

न्युमालिंग के ‘फू’ तक पहुँचने के लिये जो “धूप का घास-मैदान” है, हमें ऊँचे गोंगमारू-ला दर्रे को पार करना पड़ा, जो 17,500 फुट लंबा है। यह एक दिन लंबी यात्रा है। मेरे मित्र त्सेरिंग और मैं तो शीघ्र लौट आएँगे, पर उनकी बहन देसकित व बच्चे उसके चाचा नोर्बू के साथ रहेंगे तथा मक्खन और चीज़ बनाएंगे और लकड़ी एवं गोबर इकट्ठा करेंगे। पूरी गर्मियों के दौरान, वे लगभग एक टन सूखा गोबर एकत्र कर लेंगे, जिसका उपयोग खाना पकाने एवं अत्यधिक सर्द महिनों में कमरा गर्म रखने के लिये किया जाएगा। बाकी परिवार बीच-बीच में यहाँ आटा और ‘चांग’ लेकर तथा एकत्रित सामग्री को गाँव लाने के लिये लौटता रहेगा।

जिस सुबह हमें जाना था, हम जल्दी उठ गए। हमने उन वस्तुओं को गधों पर लादा जिनकी हमें आवश्यकता पड़ेगी: गर्म कपड़े व कंबल, जौ के आटे का कट्टा, नमक, चाय तथा सूखी

खूबानी। मध्याह्न भोजन के समय तक हम घाटी के शिखर के समीप पहुँच गए थे और हिम जलधारा के किनारे पर रुक गए। दोनों ओर खड़ी ढलान वाली पर्वत की दीवारों तपते सूर्य से अब तक हमारा बचाव कर रही थी, इसलिए हमारा समय अच्छा कटा। पर अब गर्मी बढ़ रही थी और हर कोई आराम चाह रहा था। मार्ग के दोनों ओर से कुछ टहनियाँ और गोबर इकट्ठा किया गया और त्सेरिंग ने थोड़ी-सी आग जलाई। नमकीन मक्खनी चाय बड़ी राहत देने वाली थी; अब तक मैं उसे पसंद करने लगी थी। शुष्क गर्मी में दूर तक चलने के बाद आपके शरीर का जो नमक खप चुका है आपको उसकी पूर्ति करने की आवश्यकता महसूस होती है, जबकि आपके सूखे होठों की पुकार होती है कि उन्हें आर्द्र करने हेतु थोड़ा मक्खन चाहिये।

दोपहर में जैसे-जैसे हम घाटी में ऊपर की ओर चढ़ने लगे, खामोश भू-दृश्य के अनुपम सौंदर्य ने मेरे मन में उल्लास और अतीव प्रसन्नता भर दी। फिर भी उतनी ऊँचाई पर चढ़ना बहुत ही मुश्किल और थकाने वाला काम था। साँस लेने एवं किंचित हल्का महसूस करने हेतु मुझे आराम के लिये रुकना पड़ा। त्सेरिंग, देसकित, और बच्चे भी रुक गए, यद्यपि वे अभी भी दौड़कर ढलान चढ़ सकते थे। सूर्यास्त के समय हम दर्रे के शिखर पर पहुँच गए। हम आश्चर्यचकित होकर दूर के अनगिनत पर्वत शिखरों और दर्रों को निहार रहे थे जो अस्ताचल गामी सूर्य की अंतिम किरणों से आलोकित हो रहे थे। हमने रस्म के अनुसार, “किकि सोसो, इहार ग्यालो” (“ईश्वर की जय हो”) के नारे लगाए और ‘इहातो’ पर कुछ क्षण आराम किया, इहातो या प्रार्थना ध्वज वाले स्तूप में लद्दाख के हर एक पहाड़ी दर्रे के मार्ग संकेतक होते हैं।

हम ‘फू’ के शुरूआती घरों के नज़दीक अंधेरा होते-होते पहुँचे; सूरज डूब गया था, उजाला और एक घंटे तक रहा, जिससे सौ मील दूर की झंस्कार की चोटियों की आकृतियाँ दिखाई दे रही थी। आकाश में तिमिर का प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ तारे दृष्टिगत होने लगे। दरवाजे पर खड़े होकर चाचा नोर्बू ने घाटी का मुआयना किया, यह जाँचने हेतु कि उन्होंने सभी बकरियों को घेर लिया है; रात होने से पहले उन्हें बाड़े में बंद करना ज़रूरी था।

भेड़, बकरियाँ, गाय, याक और ‘दज़ो’, सब अपना ग्रीष्मकाल न्यिमालिंग में गुजारते हैं। भेड़ों व बकरियों को घाटी के ऊपर पहाड़ियों में ले जाया जाता है, हर दिन अलग क्षेत्र में ताकि एक ही जगह अधिक न चर जाएँ। इस बीच गायें घाटी की तलहटी में घूमती रहती हैं। दज़ो और याक, सदैव ऊपर हिमनदों के आसपास चरने के लिए मुक्त होते हैं। अपनी भारी काया के बावजूद, ये शाही जानवर कठिन, खड़ी पर्वतीय चट्टानों पर बड़ी सरलता से चढ़ जाते हैं और गज़ब की गति से घूमते हैं। गर्मियों में काफी समय ‘दज़ो’ को ढूँढने में लग जाता है क्योंकि वे अपनी आदत से लाचार मीलों तक दूर निकल जाते हैं – कभी-कभी तो दो या तीन



लद्दाख की अर्धव्यवस्था में पशुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, वे माँस, दुग्ध उत्पाद, ऊन, श्रम एवं ईंधन उपलब्ध कराते हैं।

दिनों की पैदल दूरी तक — वह भी ऊँचे पर्वतीय दर्रों पर। प्रायः वे अप्रत्याशित रूप से गाँव लौट आते हैं, वे अपने चारागाह के रास्ते को पहचान लेते हैं। फसल को बचाने हेतु, उन्हें तुरंत वापस 'फू' लाया जाता है। उतनी दूर से मेरी आँखे उन्हें बैंगनी पहाड़ के आगे एक काले धब्बे से ज्यादा नहीं देख पाती थी, लेकिन देसकित का दस वर्षीय पुत्र आंगचुक न केवल यह बता सकता था कि वे 'दूजो' हैं, न कि याक और गायें, बल्कि वह अपने पशुओं को दूसरों के पशुओं में से भी पहचान सकता था।

न्यिमालिंग : घाटी के कटोरे के ऊपर 21,000 फूट ऊँची चोटी; हरित भूमि खण्ड, जंगली फूलों के कालीन; एक-दूसरे पर सीटी सी बजाते मारमोट; हवा में गूँजती बाँसुरी की जैसी आवाज तथा छोटे चरवाहों के गीत। 'फू' के उन चंद दिनों में, मैंने देखा कि जीवन हज़ारों वर्षों तक कैसा रहा होगा। भूमि, लोगों और पशुओं के बीच की घनिष्टता — एक दूजे पर उनकी निर्भरता अत्यंत मार्मिक थी — कुछ ऐसा जो मेरे जीवन का हिस्सा कभी नहीं रहा, फिर भी जो जाना पहचाना सा लगता था।

हम एक पत्थर के झोपड़े में रहे, जिनका उपयोग गर्मियों में रहने हेतु किया जाता है, गाँव के मकानों की तुलना में ये अत्यंत साधारण हैं। छोटे प्रवेश द्वार के बाद, एक लघु, अंधेरी रसोई से होकर भंडारण क्षेत्र आता है जहाँ हमने अपने साथ लाये आटे के थैलों को रखा। पत्थर की दीवारें और पाँच फुट ऊँची छत से गुफा के जैसा माहौल बनता था। फिर भी शाम को खचाखच

भरा, धुँआ युक्त कमरा, जिसमें दिये के प्रकाश में केवल चेहरों को पहचाना जा सकता था, अपनत्व की गर्माहट और उत्साह से भर उठता था। हम गाते थे, बच्चे नाचते थे और कहानियाँ तो होती ही थी।

एकाएक बाहर कुछ टूटने की आवाज आई और हमने नोबू चाचा को चिल्लाते सुना “शांगकू! शांगकू!” हम सब दौड़कर बाहर निकले और बाड़े के दूसरी ओर मैंने एक काली छाया को रात के अंधकार में गुम होते देखा। भेड़िया! नोबू अंदर से दिया लेकर आए और शिशु बछड़े के पास गए। अन्य सभी पशु बाड़े के दूसरी ओर थे। बछड़ा अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगा; उसके पुट्टे का बड़ा भाग जैसे उस्तरे से काट दिया गया हो। मैं भय से काँप रही थी और अचरज कर रही थी कि दाँत इतनी सफाई से कैसे काट सकते हैं।

लद्दाखी शांत थे। नोबू बछड़े को बाड़े में ले गए जहाँ वह अपने अंतिम घंटे शांति से व्यतीत करेगा। रसोई में वापस आकर उन्होंने बताया कि, कैसे उन्होंने एकाएक बाड़े के पत्थर की दीवार के ठीक बाहर भेड़िये को देखा, जब वे बकरों को अंदर ले जा रहे थे। उन्होंने एक पत्थर फेंका जो उसे नहीं लगा और भेड़िया, बछड़े को चीरता हुआ रुका रहा। जब वे कूद कर दीवार के उस ओर गए और छड़ी से भेड़िये को पीटने लगे तभी वह अपने शिकार को छोड़कर पर्वतों की ओर चला गया।

‘फू’ में भेड़ियों का सदा डर रहता है, भेड़ों व बकरियों के लिये अधिक; बड़े पशुओं के लिये कम। दिन के समय में भी जब दो सौ से तीन सौ पशुओं के झुंड को घाटी के ऊपरी भाग में चराने हेतु ले जाया जाता है, तब युवा चरवाहों को सतर्कता रखनी पड़ती है। मैंने देखा कि जब हम चल रहे थे, तब आंगचुक अपनी गुलेल-गोफंद की जाँच कर रहा था। मुझे मालूम था कि इस प्रकार के हमलों को पहाड़ों में स्वीकार करना पड़ता है पर उसके बावजूद लद्दाखियों की प्रवृत्ति प्रशंसनीय थी। मैंने उनमें किसी तरह की कटुता या आत्म-दया के चिह्न नहीं देखे। कुछ भी उनकी समबुद्धि को प्रभावित नहीं करता।

बाद में, त्सेरिंग ने अपना एक संस्मरण सुनाया। वह कुछ भेड़ों को ‘फू’ के निकट बीहड़ों में ले गई थी। रास्ते के थोड़ा ही ऊपर, ‘बत्सें’ (एक झाड़ी जिसका ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है) का एक गोला — पत्थर के टुकड़ों पर से लुढ़कता हुआ नीचे आ रहा था — उछल नहीं रहा था, जैसा कि आप सोच रहे होंगे बल्कि बड़ी सुगमता से फिसल रहा था — बड़े पत्थरों के ऊपर भी। उसे आश्चर्य हुआ; ऐसा उसने पहले कभी देखा नहीं था। अचरज से उसने उसे निकट आते देखा। जब वह पशुओं से कुछ दूरी पर आकर रुक गया, उसने त्सेरिंग की ओर देखा। उस झाड़ी ने, और उसने एकाएक पहचाना कि वह क्या था — हिम तेंदुआ। यह मिथकीय पशु स्वयं का रूप बदलने में इतना कुशल होता है कि उसे कोई नहीं देखा पाता। किंतु

उसके आक्रमण असली होते हैं। केवल कुछ सप्ताह पूर्व ही पड़ोसियों की तीन भेड़े मारी गई थी जब उनके बाड़े की छोटी दरार से तेंदुआ अंदर आ गया था। केवल पदचिह्नों से ही उसका पता चलता है।

“क्या आपने हमारे सभी तरह के विभिन्न व्यंजन चखे हैं — *स्क्यू, चु तागी ...?*” लोग अक्सर मुझसे मुस्कुरा कर पूछते हैं। प्रश्न ऐसे किया जाता मानो असंख्य व्यंजनों में से चुनाव करना हो। पर वास्तविकता यह थी कि चुनाव सीमित था — वे जौ को छः अलग-अलग ढंग से बनाते थे और उतने ही पकवान गेहूँ से बनाते थे।

लद्दाखी अपने भोजन को पसंद करते हैं जो यद्यपि सादा होते हुए भी पौष्टिक होता है। अनाज और मक्खन की चाय से उन्हें मुख्य तत्व मिलते हैं। जौ ज्यादातर भूनी जाती है और फिर पीस कर आटा बनाया जाता है, उससे झटपट खाना बन जाता है। ‘*न्याम्फे*’: इसे किसी तरल पदार्थ में जैसे चाय, ‘*चांग*’ या पानी में मिला कर तुरंत खाया जा सकता है। बगैर भुना जौ का आटा सूप बनाने के काम आता है, या सुखाए गए मटर में मिलाकर एक प्रकार की ब्रेड पुडिंग बनाई जाती है। एक पतले पेन केक के आकार की ब्रेड ‘*तागी सामो*’ को चुल्हे के ऊपर रख कर पकाया जाता है और मोटी, गोल पावरोटी ‘*खम्बीट*’ जो कि राख में पकाई जाती है, गेहूँ के आटे से बनती है। अधिकांशतः अतिरिक्त जौ — कभी-कभी कुल पैदावार का एक तिहाई — ‘*चांग*’ बन जाती है। छोटे शिशुओं को भी खमीर उठा जौ दिया जाता है। खमीर और जौ का मिश्रण खाने में विटामिन ‘बी’ का महत्वपूर्ण स्रोत होता है।

मक्खन चाय ‘*सोल्द्जा*’ एक तरह की हरी चाय से बनाई जाती है। पत्तियों को करीब एक घंटे तक नमक और सोड़े के साथ उबालते हैं। फिर मक्खन मिलाते हैं और मिश्रण को लकड़ी की बेलनाकार मथानी में उड़ेल देते हैं, जिसका मजेदार नाम है ‘*गुड्गुड*’। हर किसी को यह चाय पसंद है और सारा दिन जब लोग खेतों के काम कर रहे हों, पात्र उनके पास रहता है जिसे लकड़ी के कोयले से गर्म कर लेते हैं।

अधिकतर दूध ‘*ओमा*’ का मक्खन ‘*मार*’ बना लिया जाता है। कोई भी लद्दाखी पशु ज्यादा दूध नहीं देता किंतु वह बहुत पौष्टिक होता है। याक का दूध तो बहुत ही पौष्टिक होता है और उसका मक्खन मलाईदार गहरे पीले रंग का होता है। बचे हुए मठ्ठे से कम वसा वाला चीज़, ‘*चुपें*’, बनाते हैं जिसे सुखा कर धूप में कड़ा कर लेते हैं। कुछ सब्जियों के साथ ‘*चुपें*’ खूबानी (एकमात्र मीठी वस्तु) और सुखाये गये गोशत को एक वर्ष से अधिक समय तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। कुछ तरकारियाँ, जैसे शलजम और आलू को ज़मीन के नीचे बड़े कोठारों में रखा जाता है, जो घर के बाजू में खोद कर बनाए जाते हैं।

विशेषतः शीतकाल में लदाखी मांसाहार (खासकर बकरा, कभी-कभी याक और 'दूजो' भी) करते हैं। कदाचित्त इसलिए कि उसके बिना जीवित रहना कठिन है। मछली कभी नहीं खाई जाती, क्योंकि यह माना जाता है कि यदि किसी की जान ही लेना हो तो बड़े प्राणी को मारना चाहिये जिससे अनेक लोगों के लिये भोजन मिले, पर यदि आप मछली खाते हैं तो आपको कड़्यों के प्राण लेने पड़ेंगे। पशुओं को मारने को कभी हल्के ढंग से नहीं लिया जाता और यह काम बगैर क्षमा-याचना तथा प्रार्थना के नहीं किया जाता:

*वे पशु जिनका उपयोग मैं सवारी करने और भार उठाने के लिये करता हूँ,
जिन्हें मेरे लिये मारा गया है,
वे सब जिनका गोश्त मैंने लिया है,
वे शीघ्र ही बुद्धत्व को प्राप्त करें।*

हेमिस में फुंटसोग चाचा को अक्सर घर के बाहर बड़े अखरोट के वृक्ष के नीचे बुनाई करते देखा जा सकता था। सहायक युवाओं के बड़े समूह से घिरे, वे अपना काम करते जाते तथा युवा पैडल चलाते हुए उनके बोले हुए हर शब्द को सुनते थे। बीच-बीच में वे कहानियाँ या गीत सुनाते जाते थे। वे लगातार उनके लिये घर से चाय या 'चांग' मंगवाते थे और अनेक व्यवधानों के बावजूद, वे आश्चर्यजनक तेजी से काम करते थे — कभी ऐसा नहीं लगा — कि उन्होंने पूरी लंबाई का कपड़ा 'स्नाम्बू' एक दिन में तैयार न किया हो। (यह मानक लंबाई है, लगभग एक फूट चौड़ी और पैंतीस टू लंबी—टू का अर्थ है आपकी उंगलियों के छोर और कोहनी तक की लंबाई)।

लदाखी अपना ऊन या तो अपने ही जानवरों से अथवा अतिरिक्त अनाज के व्यापार से प्राप्त करते हैं, दस पौंड जौ के बदले एक पौंड ऊन। वे उसे धोते, कातते, बुनते, रंगते और स्वयं सिलते भी हैं। कातना निरंतर चलने वाली क्रिया है। आप पुरुषों व स्त्रियों को पीठ पर भार उठाकर चलते हुए भी कताई करते देख सकते हैं; ऐसा लगता है यह उनके लिये विश्राम करने का उपाय है, ध्यान लगाने का एक तरीका। पुरुष ज्यादा मोटे बकरे या याक के बालों की कताई करते हैं जिसका उपयोग कंबल, जूते, बोरियाँ व रस्से बनाने हेतु होता है। अधिकांश सिललाई तथा बुनाई वे ही करते हैं। औरतें वस्त्रों के लिये भेड़ की अधिक महीन ऊन की कताई करती हैं। कुछ गाँवों के प्रत्येक घर में एक बुनकर तो होता ही है; अन्य में कुछ ही होते हैं। उस दशा में बुनकर विनियम के आधार पर काम करता है और बदले में मक्खन, अनाज, 'चांग' या ऊन लेता है।

मैंने कई घंटे लदाखियों के साथ बातें करते और हँसते हुए व्यतीत किये हैं जब वे इस प्रकार

के काम करते थे: शाम को चूल्हे के निकट बैठे हुए या खेतों में मिल बैठकर 'चांग' पीते हुए, या पहाड़ों पर चढ़ते हुए। उन से पुरुषों के शानदार लबादे बनाए जाते हैं – लंबे और सीधे और महिलाओं के लिए उससे लंबी सी स्कर्ट भी बनती है। हर कोई ऊँची, भेड़ की चमड़ी के अस्तर वाली टोपी लगाता है और कुछ अजीब किस्म के जूते पहनता, जिसमें याक के बालों का रंगा हुआ काला गुच्छा सा सामने की ओर होता है।

गहने आयातित होते हैं। प्रत्येक फीरोज़ा, प्रत्येक मूंगा किसी चीज की बहुलता का प्रतीक होता है, जो लेन-देन हेतु उपलब्ध रहा हो। एक ही परिवार में आपको सैकड़ों कीमती पत्थर के अतिरिक्त, चाँदी और सोने के पेन्डेंट तथा सीपियों के कंगन मिल जाएंगे।

गाँवों के घर विशाल, दो या तीन मंजिला संरचनाएँ होती हैं। इसका कुल क्षेत्र 4000 वर्ग फुट या उससे भी अधिक होता है। सफेद पुती दीवारें, सपाट छत की ओर ढलवाँ होती हुई जाती हैं, जो मकान को उसकी विराटता और किले जैसे आयामों के बावजूद गरिमा प्रदान करती हैं। नया घर कभी भी धरती के देवता 'सदक' को खुश किये बगैर नहीं बनाया जाता। सबसे पहले बड़े लामा को भूमि को आशीश देने हेतु बुलाया जाता है। वह एक काँसे के दर्पण का प्रयोग करता है, आस पास क्या है, उसे परावर्तित करने के लिये और इस तरह 'सदक' को पकड़ लेता है कि वह निर्माण के दौरान उनकी नुकसान से रक्षा करे। दर्पण को सावधानी पूर्वक एक डिब्बे में रख दिया जाता है, जिसमें वह घर बन जाने तक रहता है। जब अंतिम उत्सव मनाते हैं, तब लामा बक्सों को खोल कर आत्मा को मुक्त कर देता है।

यद्यपि पहले माले के लिये प्रायः पत्थर का प्रयोग करते हैं किंतु मुख्य भवन मिट्टी का होता है। पूरा परिवार मिल कर ईंटें बनाता है; यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी लकड़ी के साँचों में मिट्टी भरने में शामिल होते हैं। चूँकि मिट्टी हर गाँव में एक सी नहीं होती; इसलिए तरीके में भी परिवर्तन होता है: कभी-कभी बड़ी ईंटें बनाई जाती हैं, कभी-कभी मिश्रण में पैरा-भूसी मिलाए जाते हैं। ईंटों को सूखने हेतु धूप में रख देते हैं और एकाध हफ्तों में वे उपयोग करने लायक हो जाती हैं। दीवारे प्रायः तीन फूट मोटी होती हैं, जिन पर महीन मिट्टी का प्लास्टर चढ़ाते हैं जिसे 'मर्कला' ("मक्खन-मिट्टी") कहते हैं, इनकी चूने से पुताई की जाती है। पोपलर की धारण, जिसमें सरपत की शाखाएँ, हेरिंग मछली की हड्डी के आकार में रखी जाती है, से सपाट छत बनती है। 'याग्दजास' एक तरह की झाड़ी होती है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह सौ वर्षों तक खराब नहीं होती, लकड़ी के शीर्ष पर रखी जाती है, जिसे मिट्टी व गारे से भर दिया जाता है। चूँकि हिमपात बहुत कम होता है इसलिए जो भी बर्फ गिरती है, वह सरलता से हट जाती है और पानी तो कभी इतना बरसता ही नहीं है कि किसी तरह रिसन हो।



हेमिस सुकपाचन का एक विशिष्ट घर। खूबसूरती से उत्कीर्ण छज्जे (रापसाल) गाँव के सुतार द्वारा बनाए गए हैं।

निवास के अतिरिक्त भी, घर का और बहुत कुछ उपयोग होता है; ऐसी बातों पर समय बिताया जाता है, जो शुद्धतः सौंदर्यपरक होती हैं। खिड़कियों व दरवाजों पर विशेष ध्यान दिया जाता है और उन पर नक्काशी भी की जाती है (गाँव के सुतार की कारीगरी); सबसे ज्यादा लोकप्रिय संरचना कमल होती है। एकदम काले किनारे, लगभग दस इंच चौड़े, जो कालिख और मिट्टी के मिश्रण से बनाए जाते हैं, सफेद पुती दीवारों में अलग से उभरते हैं। छोटे छज्जे ऊपर की मंजिलों की शोभा बढ़ाते हैं, उनमें भी सुंदर कलाकारी की गई होती है।

घरों का प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुखी होता है क्योंकि इसे शुभ माना जाता है। पथरों के जीने आपको प्रथम तल के पर ले जाते हैं; तल मंजिल पशुओं के बाड़े के रूप में प्रयुक्त होती है। प्रवेश द्वार के आगे रसोई का कमरा होता है, जो साथ के भंडार कक्षों को मिलाकर प्रथम तल का अधिकांश भाग घेर लेता है; द्वितीय तल के बड़े आँगन से आपके ऊपर प्रकाश आता है।

रसोई, घर की हृदय स्थली होती है; यहाँ परिवार अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है। रसोईकक्ष इतना बड़ा होता है कि कमरे के उस ओर यदि किसी से बात करनी हो तो बड़ा कठिन होता है। कुछ कम ऊँचे टेबलों तथा आसनियों के अलावा घर में कोई फर्नीचर नहीं होता; दो तिहाई फर्श को पूरी तरह से बगैर कोई सामान फैलाए छोड़ दिया जाता है। दीवाल से लगी हुई आकर्षक लकड़ी की अलमारियों की कतार होती है, जिनमें जगमगाते, हर आकार के पात्र रखे

रहते हैं। प्रत्येक रसोई का केंद्र बिंदु चमकता काला चूल्हा होता है। हालांकि यह लोहे का बना लगता है, पर असल में होता मिट्टी का है। इसके चारों ओर सौभाग्य देने वाले चिह्न तथा अन्य बौद्ध आकृतियाँ होती हैं, जो प्रायः फीरोज़ा और मूंगों से जड़ी होती हैं। आग सूखे गोबर से जलाई जाती है और बकरे के चमड़े से बनी धौंकनी से जलती रखी जाती है।

घर का अधिकांश भाग भंडारगृह के रूप में प्रयुक्त होता है, क्योंकि साल में छः महीनों से अधिक समय तक बाहर कुछ भी पैदा नहीं होता। रसोई से सटा हुआ मुख्य भंडार कक्ष होता है, इसकी मोटी दीवारें सुनिश्चित करती हैं कि वह गर्मियों में बर्फ जैसा ठंडा रहे। इसमें लकड़ी के बड़े पीपे 'चांग' के लिये, मिट्टी के पात्र दही और दूध के लिये, बड़ी कोठियाँ जौ तथा गेहूँ के आटे के लिये होती हैं। छत पर अल्फाल्फा घास जानवरों के लिये तथा झाड़ियाँ एवं गोबर रसोई चूल्हों के लिये होते हैं। गर्मियों में याक के बालों से बने कंबलों को छत पर फैला देते हैं और उस पर सब्जियाँ, खूबानी और कभी-कभी चीज़ को सूखने के लिये बिखेर देते हैं।

सबसे ऊपर की मंजिल पर आँगन के चारों ओर दो या तीन कमरे होते हैं — ठेठ अतिथि कक्ष, ग्रीष्म कालीन शयन कक्ष एवं पारिवारिक मंदिर 'चेपल' — घर का सबसे बेहतर ढंग से बना हुआ और कीमती हिस्सा। अतिथि कक्ष, जिसमें अधिक औपचारिक मनोरंजन चलता रहता है, को जम कर सजाया जाता है और पूरे फर्श पर तिब्बती गलीचे बिछे रहते हैं। मंदिर में धार्मिक ग्रंथ व अन्य अस्तियाँ जो पीढ़ियों से चली आ रही हैं, होती हैं। खूबानी के तेल की तीव्र महक, इस छोटे एवं निःशब्द कक्ष में व्याप्त रहती है। घिस चुके 'थंकास' (कपड़ों का धार्मिक चित्र), दीवारों पर लगे होते हैं और एक बड़ा पीपा छत से लटका रहता है। एक करीने से तराशी और रंग की हुई वेदी, चाँदी के कटोरों तथा मक्खन के दियों से सनी हुई रहती है। विशेष दिवसों पर बौद्ध-पंचांग के अनुसार भिक्षु यहाँ एकत्रित होते हैं और धार्मिक उत्सव करवाते हैं तथा हर दिन सुबह-शाम, परिवार का कोई न कोई सदस्य प्रसाद चढ़ाता है, तेल भरे दीपकों को जलाता है, कटोरों में पानी भरता है तथा मंत्रों व प्रार्थना का उच्चारण करता है।

चरम जलवायु और संसाधनों की न्यूनता के बावजूद लद्दाखी न सिर्फ अपने अस्तित्व को बनाए रखते हैं अपितु उससे कई अधिक आनंद भी भोगते हैं जो अत्यंत सराहनीय उपलब्धि है, क्योंकि उनके पास केवल बुनियादी औजार ही काम करने के लिये होते हैं। हल व करघे के अतिरिक्त उनके पास तकनीक के नाम पर पानी चलित चक्की (वाटर मिल) ही होती है — कुशल, मौलिक व सरल डिज़ाइन की। यह घर्षण से चलने वाली अनाज पीसने की तकनीक है, जिसमें किसी के लिये नज़र रखने की ज़रूरत नहीं होती। इसके अलावा केवल फावड़ा, कुदाली, आरी, हँसिया और हथौड़े जैसे औजारों से काम चलाया जाता है। इससे अधिक किसी

परिष्कृत वस्तु की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अनेक कार्यों के लिये जहाँ हम भारी मशीनों से काम लेते हैं, लद्दाखियों के पास पशु तथा आपसी सहयोग (टीम वर्क) होता है। हर कार्य के लिये गीत भी होता है:

ल्हामो ख्योंग, ल्हामो ख्योंग

याले ख्योंग, ल्हामो-ले

(“आराम से, आराम से काम होगा”)

ज्यादातर सामग्री का परिवहन याक, ‘दुजो’, घोड़ों और गधों से करते हैं। ईंटों और पत्थरों को पहुँचाने का काम अक्सर लोगों की लंबी कतार से संपन्न होता है, जो एक-दूसरे को देते जाते हैं; अगर लंबे वृक्ष के तने जैसी किसी वस्तु को इधर-उधर करना हो तो लोगों का समूह मिल कर टीम बना लेता है।

अपने अत्यंत साधारण औजारों से, लद्दाखी प्रत्येक कार्य के लिये काफी समय लगाते हैं। कपड़ों के लिये ऊन का उत्पादन पर्याप्त समय लेने वाला काम है, चरती हुई भेड़ों पर नजर रखने से लेकर हाथ के औजारों से उनके बाल काटना और आरंभ से अंत तक ऊन पर काम करना – सफाई, कटाई और अंत में बुनाई। इसी प्रकार अन्न का उत्पादन, बीज की बुआई से लेकर, जब तक वह थाली में परोसा न जाए, हर कार्य मेहनत मांगता है। इस सब के बावजूद मैंने पाया कि लद्दाखियों के पास बहुत फुर्सत रहती है। वे मंद-मंथर गति से काम करते हैं और विश्राम के लिये भी बहुत समय निकाल लेते हैं।

समय का अनुमान बड़े ढीले-ढाले ढंग से किया जाता है; मिनटों में गिनने की कोई जरूरत नहीं होती। “मैं तुमसे मध्याह्न में, शाम के समय मिलने आऊँगा,” वे कहेंगे और इस तरह स्वयं को कई घंटों की छूट दे देंगे। लद्दाखी के पास समय बतलाने के बड़े प्यारे शब्द हैं। ‘गांगरोट’ का मतलब है “अंधेरा होने के बाद से सोने का समय होने तक”; ‘निवत्से’ का शाब्दिक अर्थ है “पर्वत शिखरों पर धूप”; और ‘चिपे चिर्रिट’, “पक्षी गीत” का अर्थ है, सुबह का समय, सूर्योदय से पहले जब पक्षी गाने लगते हैं।

कटाई के मौसम में भी, जब देर तक काम करना होता है, काम उसी मंथर गति से किया जाता है, जिससे अस्सी वर्षीय वृद्ध और नन्हें बच्चे भी मदद करने के लिए शामिल हो सकते हैं। लोग कड़ी मेहनत करते हैं, पर अपनी गति से, हँसते और गाते हुए। खेल और काम के बीच कोई सुस्पष्ट सीमा रेखा नहीं है।

लद्दाखी, साल के केवल चार महीनों के दौरान ही असली काम करते हैं। शीत ऋतु के आठ महीनों में उन्हें भोजन बनाना, पशुओं को भोजन देना और पानी लाना-ले-जाना पड़ता है, किंतु काम कम से कम होता है। सर्दियाँ ज्यादातर उत्सवों और दावतों में बिताई जाती हैं। गर्मियों के

दौरान भी, शायद ही कोई सप्ताह ऐसा बीतता होगा जिसमें कोई बड़ा त्योहार या समारोह न होता हो, जबकि सर्दियों में यह बिना रुके चलता रहता है।

सर्दियाँ, कहानियाँ सुनाने का भी समय है। वस्तुतः लद्दाख में कहावत है, “जब तक धरती हरी है, कोई कहानी नहीं कही जानी चाहिये।” गर्मियों में कहानी सुनाने पर यह प्रतिबंध कदाचित्त इसलिए लगाया गया है ताकि लोग उन चंद्र छोटे महीनों में अपना ध्यान कृषि कार्य पर लगाएँ। एक प्राचीन ‘गेसर’ वीरगाथा में एक मिथकीय नायक दूर दराज़ के इलाकों तक की यात्राएँ करता है, अनेक पहाड़ी दरों को पार करता है, कई राक्षसों को पराजित करता है और ईश्वर की सहायता से अनेक के प्राण बचाता है। लोग अलाव के चारों ओर बैठते और बीच-बीच में कहानी सुनाने वाला प्रचलित गीत गाता या टेक लगाता है और सभी लोग उसमें सम्मिलित होकर गाते हैं:

*उसके बाद क्या हुआ मुझसे अब सुनो;
विश्व की कहावतों में:*

*युवा महिला सोए नहीं, जागती रहे;
यदि वह सो गई, तो चरखा पड़ा रह जाएगा।
यदि चरखा पड़ा रहा, तो वस्त्र नहीं होंगे;
यदि ऐसा हुआ, तो अफवाहें फैलेंगी।*

*युवा पुरुष सोए नहीं, जागता रहे;
यदि वह सो गया, तो तीर रखा रह जाएगा।
यदि तीर रखा रहा, तो शत्रु सिर उठाएगा;
यदि शत्रु ने सिर उठाया; राजनीति की हानि होगी।*

*गुन्मा और गेसर
आकाश, सूर्य व चंद्र के जैसे हैं।
वे दया और विवेक, धनुष और बाण हैं।
वे बुद्ध की शिक्षा के प्रचारक हैं।*